सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरप्रदेश के कतिपय विशिष्ट जैन व्यापारी

डॉ. उमानाथ श्रीवास्तव

जैन समाज के सदस्यों द्वारा धार्मिक-मान्यता 'अहिंसा परमो धर्मः' के सिद्धान्त का पालन व्यापार के क्षेत्र में भी किया जाता रहा है। ये लोग कुछ उसी प्रकार का व्यापार अथवा व्यवसाय करते हैं, जिसमें हिंसा न हो। अतः लकड़ी काटने, मछली मारने या उससे सम्बन्धित व्यवसाय, शहद (मधु) का व्यापार, खेती करना आदि इनके हेतु वर्जित हैं, क्योंकि इनसे जीव-हिंसा होने की संभावना बनी रहती है। इसलिए ये कुछ खास प्रकार के ही व्यापार अथवा व्यवसाय करते हैं।

सत्रहवीं शताब्दी का समय भारतवर्ष के व्यापारिक इतिहास में चरमोत्कर्ष का काल था।[१] उस समय मुगल-साम्राज्य का राजनीतिक विस्तार काबुल से बंगाल की खाड़ी तक तथा कश्मीर से सुदूर दक्षिण तक हो गया था। महान् मुगल-सम्राट् अकबर ने राजनीतिक स्थिरता के साथ ही जीवन तथा सम्पत्ति की सुरक्षा भी प्रदान की तथा भारतीय व्यापार और व्यवसाय को उन्नति प्रदान करने के लिए समुचित वातावरण का निर्माण भी किया था।[२] ऐसे उपयुक्त समय में भारतवर्ष के जैनों, विशेषकर गुजराती तथा राजस्थानी जैनों ने इस अवसर का लाभ उठाकर व्यापारिक प्रगति की।

मुगलवंश के संस्थापक बाबर ने आगरा (उ० प्र०) को अपनी राजधानी बनाया था। उसे शासन-व्यवस्था को सुदृढ़ करने के लिए पर्याप्त अवसर नहीं मिला, इसी प्रकार हुमायूँ का भी पूरा जीवन अपने शत्रुओं के विरुद्ध युद्ध करने में ही समाप्त हो गया। अतः राजधानी आगरा की व्यापारिक एवं राजनीतिक उन्नति नहीं हो सकी। महान् मुगल सम्राट् अकबर ने आगरा को विशाल भवनों आदि से सुसज्जित कर एक महत्त्वपूर्ण स्थान का दर्जा प्रदान किया। राजधानी होने के कारण आगरा को व्यापारिक प्रधानता भी मिली। देश भर के महत्त्वाकांक्षी व्यापारी और व्यवसायी

---

१. डॉ. सुरेन्द्रगोपाल 'सत्रहवीं सताब्दी में बिहार में जैन' प्रोसीडिंग्स **भारतीय इतिहास कांग्रेस का तैंतीसवाँ अधिवेशन** (१९७२) पृ० ३२०।

२. वही, पृ० ३२०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आगरा आकर व्यापार करने लगे। आगरा की व्यापारिक एवं राजनीतिक महत्ता को देखते हुए अंग्रेजों ने अपनी व्यापारिक कम्पनी की एक शाखा जहाँगीर के शासन काल के प्रथम दशक में ही यहाँ स्थापित कर दी थी।

जैन स्रोतों से यह भी पता चलता है कि अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ के शासन-काल तक आगरा की व्यापारिक प्रधानता बनी रही। अकबर तथा जहाँगीर के समकालीन जैन मुनि सिद्धिचंद ने लिखा है—"यह नगर यमुना नदी के किनारे बसा हुआ है। धनी व्यापारी और दुकानदार यहाँ निवास करते हैं। बाहर से भी व्यापारी यहाँ आते हैं तथा खरीद-बिक्री करते हैं, हाथी, घोड़े, पक्षी, हीरे, जवाहरात, दास, कपड़े, मीठे फल, सब्जी आदि का उच्च स्तर पर यहाँ व्यापार होता है।[3] सत्रहवीं शताब्दी के महान् जैन कवि बनारसीदास ने भी अपने आत्मचरित्र "अर्धकथानक" में आगरा की व्यापारिक एवं राजनीतिक प्रधानता का वर्णन किया है।

सम्राट अकबर जैनों के 'अहिंसा' के सिद्धान्त से प्रभावित हुआ था। अतः उसने जैनों के कुछ महत्त्वपूर्ण पर्वों पर मुगल-साम्राज्य में जीवहिंसा पर प्रतिबंध लगा दिया था। इस संदर्भ में उसने कई फर्मान जारी किये थे।[4] सम्राट जहाँगीर ने सम्राट बनने पर इन राज्याज्ञाओं को पुनः जारी नहीं किया। अतः आगरा के प्रमुख जैनों ने १६१० ई० में प्रसिद्ध तपागच्छाचार्य श्रीविजयसेन सूरि को गुजरात में इस संदर्भ में प्रयास करने के लिए एक विज्ञप्ति पत्र भेजा।[5] श्री सूरि अस्वस्थता के कारण नहीं जा सके, लेकिन उन्होंने अपने दो प्रमुख शिष्यों, विवेकहर्ष और उदयहर्ष को जहाँगीर के दरबार में आगरा भेजा था। राजा रामदास के प्रयास से सम्राट जहाँगीर ने उपर्युक्त राजाज्ञाओं को पुनः जारी किया। इस विज्ञप्ति पत्र को कलात्मक रीति से तैयार किया गया था, जिसे दरबारी चित्रकार शालिवाहन ने चित्रित किया था।[6] इसमें राजदरबार और जैनों के सामाजिक एवं धार्मिक जीवन का सुन्दर चित्रण किया गया था।

३. सिद्धिचन्द उपाध्याय, **भानुचन्द्रगणिचरित्रम्** मोहनदास दलीचन्द देसाई (संपा०) (कलकत्ता, सिंघी जैन ग्रन्थमाला १९४१) उग्रसेनपुरवर्णनम् पृ० ३।

४. महावीर प्रसाद द्विवेदी 'हीरविजयसूरि' **सरस्वती** (जून १९१२)।

५. विस्तार के लिए डॉ० हीरानन्द शास्त्री **प्राचीन विज्ञप्ति पत्र** (बड़ौदा राज्य प्रेस, १९४२) पृ० १९–४२।

६. एन० सी० मेहता, **स्टडीज इन इंडियन पेन्टिंग** (बम्बई, १९२६) पृ० ६९।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार इस विज्ञप्ति पत्र से जैनों की राजनीतिक एवं धार्मिक स्थिति पर प्रकाश पड़ता है। साथ ही इससे जहाँगीरकालीन आगरा के कुछ प्रमुख जैन सेठ-साहूकारों के नाम भी प्रकाश में आते हैं। इससे सत्रहवीं शताब्दी के जैन व्यापारियों के बारे में जानकारी भी प्राप्त होती है। १७वीं शताब्दी के अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कंपनी के दस्तावेजों में इन व्यापारियों के संबंध में महत्त्वपूर्ण सूचनायें प्राप्त होती हैं।

उपर्युक्त स्रोतों के आधार पर सत्रहवीं शताब्दी के आगरा के कुछ प्रमुख जैन व्यापारियों का विवरण इस प्रकार है :—

१. हीरानंद मुकीम

सम्राट अकबर के शासन के अंतिम वर्षों तथा जहाँगीर के शासन काल के प्रारंभ में आगरा के सेठ हीरानंद शाह अत्यन्त धर्मात्मा एवं धनवान् व्यक्ति थे। इनकी जाति ओसवाल थी। ये हीरे-जवाहरात का व्यापार करते थे तथा अकबर के समय में शाहजादा सलीम के कृपापात्र जौहरी थे।[७] अकबर की मृत्यु के पश्चात् भी ये जहाँगीर के कृपापात्र जौहरी बने रहे। संभवतः इनको जवाहरात की मुकीमी का पद मिला था। इनके पिता का नाम साह कान्हड़ तथा माता का नाम भामनीबहू था।[८] इनके पुत्र का नाम शाह निहालचंद था। इन्होंने १६०४ ई० में सम्मेदशिखर तीर्थ के लिए संघयात्रा की थी। संघ के साथ हीरानन्द सेठ के अनेक हाथी, घोड़े, पैदल तथा तुपकदार थे।[९] शाह हीरानन्द की ओर से पूरे संघ को प्रतिदिन भोज दिया जाता था। संघ लगभग एक वर्ष तक यात्रा करने के पश्चात् वापस आया। इस धार्मिक कार्य से शाह हीरानंद मुकीम की आर्थिक स्थिति का आभास मिलता है। सम्राट् अकबर की मृत्यु (१६०५) के पश्चात् जब जहाँगीर सम्राट् बना, तब भी शाह हीरानंद उनके व्यक्तिगत जौहरी और कृपापात्र बने रहे। सन् १६१० ई० में शाह हीरानंद ने सम्राट जहाँगीर को अपने घर आमंत्रित किया, अपनी हवेली की भारी सजावट की, सम्राट को बहुत मूल्यवान् उपहार दिया और उसको तथा दरबारियों को शानदार

---

७. बनारसीदास, **बनारसी विलास अर्धकथानक समीक्षा सहित,** नाथूराम प्रेमी (संपा०) (बम्बई, जैन ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय १९०५) पृ० ४९।

८. पूरनचन्द नाहर संक० **जैनलेख संग्रह** द्वितीय भाग (कलकत्ता १९२७) लेखांक १४५१।

९. अगरचन्द नाहटा 'शाह हीरानन्द तीर्थयात्रा विवरण और सम्मेतशिखर चैत्य परिपाटी' **अनेकान्त** (मई १९५७) पृ० ३००।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दावत दी।[10] इस प्रकार, शाह हीरानन्द मुकीम न केवल एक धनी व्यापारी और धार्मिक व्यक्ति थे, बल्कि सम्राट् जहाँगीर के कृपापात्र भी थे।

इनके पुत्र शाह निहालचन्द्र भी संभवतः हीरे-जवाहरात का ही व्यापार करते थे। यह भी एक धार्मिक व्यक्ति थे। सन् १६११ ई० में जिनचन्द्रसूरि से एक पार्श्व प्रतिमा प्रतिष्ठित करवाई थी।[11] सन् १६१० ई० में आगरा के जैन संघ की ओर से तपागच्छाचार्य विजयसेनसूरि को जो विज्ञप्ति पत्र भेजा गया था, उसमें वहाँ के ८८ श्रावकों तथा संघपतियों के हस्ताक्षर थे। उस सूची के संघपति नीहालु ही शाह हीरानंद मुकीम के पुत्र निहालचंद्र थे।[12]

२. सबलसिंह मोठिया

ये नेमिदास (नेमा) साहू के पुत्र तथा जहाँगीर के शासनकाल में आगरा के एक अति वैभवशाली जैन व्यापारी थे। इन्होंने बनारसीदास को (सन् १६१५–१६ ई. में) आगरा के व्यापार में असफल हो जाने पर साझे में नरोत्तमदास जैन के साथ व्यापार करने के लिये पूर्व की ओर—पटना, बनारस, जौनपुर आदि नगरों की ओर भेजा था[13], क्योंकि वहाँ भी उस समय अच्छी व्यापारिक मण्डियाँ थीं। संभवतः सबलसिंह मोठिया ने इन व्यापारियों, बनारसीदास एवं नरोत्तमदास को आर्थिक सहायता प्रदान की होगी तथा यह भी आभास मिलता है कि सबलसिंह मोठिया की उक्त नगरों में भी व्यापारिक शाखायें रहीं होगी जहाँ बनारसीदास एवं नरोत्तमदास उनके प्रतिनिधि के रूप में गये होंगे। इन लोगों को वहाँ व्यापारिक सफलता मिली थी। यद्यपि नरोत्तमदास वापस आगरा आ गये थे, लेकिन बनारसीदास पिता की बीमारी के कारण आगरा वापस नहीं आ सके थे। नरोत्तमदास का लेखा (साझे का हिसाब) साफ हो गया था लेकिन बनारसीदास की अनुपस्थिति के कारण ऐसा नहीं हो सका। बनारसीदास को सबलसिंह ने इस संदर्भ में एक पत्र भेजा था कि आगरा आकर अपना हिसाब साफ कर लो, बाद में बनारसीदास के आगरा आने पर काफी

---

१०. ज्योतिप्रसाद जैन, **प्रमुख ऐतिहासिक जैन पुरुष और महिलाएँ** (काशी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रका०, १९७५) पृ० २९०।

११. वही, पृ० २९०।

१२. डॉ० हीरानन्द शास्त्री, **प्राचीन विज्ञप्ति पत्र** (बड़ौदा, राज्य प्रेस, १९४२) पृ० २५।

१३. बनारसीदास' **बनारसी विलास, अर्धकथानक की समीक्षा सहित**, नाथूराम प्रेमी (संपा०) (बम्बई, जैन ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय प्रका० १९०५) पृ० ७५।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

परेशानियों के बाद उनका हिसाब साफ हो सका था। चूँकि इस संदर्भ में बनारसीदास को सबलसिंह मोठिया की हवेली पर कई बार जाना पड़ा था, इसलिए बनारसीदास ने उनकी हवेली एवं दरबार के शानशौकत का विशेष उल्लेख किया है।[१४] वे लिखते हैं कि साहू जी का दरबार जिस तरह से सुसज्जित था, उस तरह उन्होंने इसके पूर्व नहीं देखा था। साहू जी तकिये के सहारे पड़े हैं, बंदीजन विरद पढ़ रहे है, नृत्यांगनाएँ नृत्य कर रही हैं, भाड़ भी मस्त हैं तथा सेठ जी के सेवक भी मगन हैं।[१५] इस प्रकार बनारसीदास के विवरण से पता चलता है कि सेठ सबलसिंह मोठिया उस समय के एक अतिवैभवशाली सेठ (साहूकार) थे। इसके ही साथ वह एक ऐसे महाजन थे, जो साझेदारों को व्यापार करने के लिए आर्थिक सहायता भी प्रदान करते थे, अर्थात् वह रुपये के लेन-देन का भी कार्य करते थे। यद्यपि इनके द्वारा किया गया कोई धार्मिक कार्य का उल्लेख नहीं मिलता तथापि १६१० ई. में आगरा के जैन संघ की ओर से तपागच्छाचार्य विजयसेनसूरि को जो विज्ञप्ति पत्र भेजा गया था, उसमें संघपति सबल ही सबलसिंह जान पड़ते हैं।[१६]

३. वर्द्धमान कुँवर जी

वर्द्धमान कुंवर जी आगरा नगर के निवासी तथा संघपति की उपाधि से विभूषित थे। ये दलाली का काम करते थे।[१७] एक व्यापारी होने के साथ ही यह धार्मिक व्यक्ति भी थे। सन् १६१८ ई. में बनारसीदास आदि के साथ इन्होंने अहिच्छत्रा (बरेली) एवं हस्तिनापुर (मेरठ) आदि जैन तीर्थों की यात्रा की थी।[१८] सन् १६१० ई. के आगरा विज्ञप्ति पत्र में इनका भी नाम है।[१९]

४. साहू बन्दीदास

ये आगरा नगर के निवासी थे तथा जवाहरात का व्यापार करते थे। इनके पिता का नाम दूलहसाह था। इनके बड़े भाई उत्तमचंद जौहरी भी आगरा में निवास करते हुए जवाहरात का व्यापार करते थे। साहू बंदीदास जैन कवि बनारसीदास के बहनोई थे तथा मोतीकटरा मुहल्ले में रहकर मोती आदि जवाहरातों का व्यापार करते थे।[२०] सन् १६११ ई. में बनारसीदास कपड़ा, जवाहरात, तेल, घी आदि वस्तुओं को

१४. वही, पृ. ८२। १५. वही, पृ. ८२। १६. **प्राचीन विज्ञप्ति पत्र** पृ. २५।

१७. **प्रमुख ऐतिहासिक जैन पुरुष और महिलायें**, पृ. २९१।

१८. वही, पृ. २९१।

१९. डॉ० हीरानंद शास्त्री, **प्राचीन विज्ञप्ति पत्र**, पृ. २५।

२०. बनारसीदास, **बनारसीविलास अर्धकथानक की समीक्षा सहित**, पृ. ५७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लेकर व्यापार करने के लिए आगरा गये थे, इस समय साहू बंदीदास की सहायता से इनको मोतीकटरे में किराये पर एक मकान मिल सका था।[२१] आगरा-विज्ञप्ति-पत्र में इनके नाम का भी उल्लेख है।[२२]

५. ताराचन्द्र साहू

ये आगरा के धनी श्रावक एवं व्यापारी थे।[२३] इनके अनुज कल्याणमल थे, जो खेराबाद (सीतापुर) के निवासी एवं धनी व्यापारी थे। उस समय खेराबादी कपड़ों की काफी माँग थी। संभवतः कल्याणमल जी कपड़ों का ही व्यापार करते थे, इनके बड़े भाई व्यापार को ध्यान में रखते हुए राजधानी आगरा में जा बसे थे। सेठ कल्याणमल की पुत्री के साथ कविवर बनारसीदास का विवाह हुआ था।[२४]

ताराचंद्र साहू ने बनारसीदास को, जब वे व्यापार में असफल रहे थे, आगरा में लगभग २ महीने तक अपने घर में रखा था। इन्हीं के यहाँ रहकर बनारसीदास ने धरमदास जौहरी के साथ साझे में व्यापार करना शुरु किया था।[२५] सन् १६१० के आगरा विज्ञप्ति पत्र में इनका नाम अंकित है।[२६]

६. खरगसेन

खरगसेन के पिता का नाम मूलदास था। सन् १५५१ ई० में ये नरवर (ग्वालियर) के मुगल उमराव के व्यक्तिगत मोदी थे। उनकी मृत्यु के बाद खरगसेन अपनी माता के साथ अपने ननिहाल (जौनपुर) में आकर रहने लगे। इनके नाना मदनसिंह चिनालिया जौनपुर के नामी जौहरी थे। चूँकि मदनसिंह के कोई पुत्र नहीं था, इसलिए उन्होंने खरगसेन को पुत्र की तरह स्नेह दिया तथा व्यापार करने के लिए प्रोत्साहित किया। इसी संदर्भ में खरगसेन जी ने बंगाल के पठान सुलतान के राज्य में दीवान धन्नाराय के अधीन चार परगनों की पोतदारी की। उनकी मृत्यु के पश्चात् आप जौनपुर लौट आये। सन् १५६९ ई. में इन्होंने आगरा आकर सुन्दरदास पीतिया नामक व्यापारी के साथ साझे में व्यापार किया।[२७] इसमें आपको काफी आय हुई।

---

२१. वही, पृ. ५७।

२२. डॉ. हीरानंद शास्त्री, **प्राचीन विज्ञप्ति पत्र**, पृ. २५।

२३. बनारसीदास, **बनारसी विलास अर्द्धकथानक की समीक्षा सहित**, पृ. ६२।

२४. वही, पृ. ३४। २५. वही, पृ. ६३।

२६. **प्राचीन विज्ञप्ति पत्र**, पृ. २५।

२७. **बनारसीविलास अर्द्धकथानक की समीक्षा सहित**, पृ. ३१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसी समय खरगसेन का विवाह मेरठ नगर के सूरदास जी श्रीमाल की कन्या के साथ हुआ। सन् १५७६ ई० में खरगसेन ने आगरा नगर, विपुल धन का अधिकारी होकर, छोड़ दिया। जौनपुर आकर आप वहाँ के प्रसिद्ध धनिक लाला रामदास जी अग्रवाल के साथ साझे में जवाहरात का व्यापार करने लगे।[२८] इन्होंने अपनी पुत्रियों का विवाह आगरा एवं पटना में धनी व्यापारियों के साथ किया। कुछ समय तक खरगसेन इलाहाबाद नगर में शाहजादा दनियाल के सूबेदारी में, जवाहरात के लेन-देन का व्यापार करते रहे। शाहजादा दनियाल द्वारा व्यक्तिगत जवाहरात की माँगों को ये ही पूरा करते थे।[२९] खरगसेन अपने जीवन के अंतिम समय तक जौनपुर में ही रहकर जवाहरात का व्यापार करते रहे। सन् १६१७ ई. में बीमारी के पश्चात् जौनपुर में इनका निधन हो गया।

७. बनारसीदास

कविवर बनारसीदास खरगसेन जौहरी के एकमात्र पुत्र थे। अधिक लाड़ प्यार के कारण बनारसीदास अपने पैतृक व्यवसाय में बराबर असफल होते रहे। इन्होंने कई बार भिन्न-भिन्न स्थानों पर व्यापार किया, लेकिन दुर्भाग्यवश सफलता नहीं मिली। सबलसिंह मोठिया ने पूर्व की ओर बनारस, जौनपुर, पटना, आदि स्थानों पर व्यापार के लिए इनको भेजा था, लेकिन उसमें भी लाभ नहीं मिला। व्यापारी होने के साथ ही आप एक कवि भी थे। इन्होंने अपनी आत्मकथा लिखी है, जिसमें अपने जीवन के पचपन वर्षों की घटना को लिपिबद्ध किया है, इसीलिए उसका नाम "अर्ध कथानक" रखा। इसमें उन्होंने १५८६ ई० से १६४१ ई. तक की घटनाओं का वर्णन किया है। संभवतः हिन्दी भाषा का यह प्रथम आत्मचरित्र है। कवि होने के साथ ही आप एक व्यवहार कुशल व्यक्ति भी थे। जौनपुर के अधिकारी चिनकलीच खाँ से आपकी मित्रता थी, उसको इन्होंने "श्रुतिबोध" आदि ग्रंथ पढ़ाये थे।[३०] बनारसीदास के आत्मचरित्र "अर्ध कथानक" से पता चलता है कि सत्रहवीं शताब्दी में न केवल उत्तरप्रदेश में, बल्कि बिहार और बंगाल में श्रीमाल, ओसवाल, अग्रवाल आदि जातियों के जैन व्यापारी निवास करते थे तथा उनकी समाज एवं शासन में प्रतिष्ठा थी। सम्राटों, सूबेदारों एवं अन्य पदाधिकारियों से इनका विशेष सम्बन्ध बना रहता था। अधिकांश जैन व्यापारी सुशिक्षित होते थे तथा सरलतापूर्वक दूसरे राज्यों की भाषाओं को सीख लेते थे।

---

२८. वही, पृ. ३१। २९. वही, पृ. ३९।

३०. डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन, **प्रमुख ऐतिहासिक जैन पुरुष और महिलायें,** पृ. २९२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८. धरमदास जौहरी

ये आगरा-निवासी जैन व्यापारी थे। इनके पिता का नाम अमरसी था। संभवतः ये गुजरात के मूल निवासी जान पड़ते हैं, कदाचित् व्यापार को ध्यान में रखते हुए आगरा आ बसे थे।[३१] धरमदास बुरे व्यसनों से ग्रस्त था, इसीलिए इसके पिता अमरसी ने इसको बनारसीदास का व्यापारिक साझीदार बना दिया था। इस संदर्भ में अमरसी ने धरमदास जौहरी को ५०० मुद्रायें दी थीं। इस प्रकार बनारसीदास और धरमदास जौहरी ने मोती, माणिक, मणि, चूना आदि वस्तुओं को खरीदने एवं अच्छे दामों में बेचने का व्यापार किया जिसमें इनको लाभ भी मिला था।[३२]

९. संघपति चन्दू

ये आगरा नगर के एक धनी जैन थे। संघपति, जैन समाज की एक विशिष्ट उपाधि होती थी। धनी एवं व्यापारी होने के साथ ही साथ आप एक धार्मिक व्यक्ति भी थे। सन् १६१० ई. के आगरा-संघ के विज्ञप्तिपत्र, जो श्रीविजयसेन सूरि को भेजा गया था, में सूरि जी से संघपति चन्दू द्वारा निर्मित नवीन जिन चैत्य की प्रतिष्ठा हेतु पधारने हेतु नम्र प्रार्थना की गई थी।[33]

१०. तिहुना साहु

ये सत्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के एक धनी जैन व्यापारी थे। इनकी जाति अग्रवाल थी। इन्होंने आगरा में एक विशाल जिनमंदिर बनवाया था।[३४] आगरा के तिहुना साहू के इसी मंदिर में रूपचन्द्र नाम के गुणी विद्वान् १६३५ ई. में आकर ठहरे थे। इनके पांडित्य की प्रशंसा सुनकर बनारसीदास की मण्डली के सभी अध्यात्मप्रेमी उनसे जाकर मिले और विनयपूर्वक उनसे "गोम्मटसार" का प्रवचन कराया था।[३५]

---

३१. बनारसीदास, **बनारसीविलास अर्द्धकथानक समीक्षा सहित**, पृ. ६३।

३२. वही, पृ. ६३।

३३. भँवरलाल नाहटा, उदयपुर का सचित्र विज्ञप्तिपत्र, **नागरी प्रचारिणी पत्रिका** १९५२, अंक २–३।

३४. बलभद्र जैन, संपा., **भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ** प्रथम भाग बम्बई, भारतवर्षीय दि० जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी प्रकाशन, १९७५, पृ. ६०।

३५. **प्रमुख ऐतिहासिक जैन पुरुष और महिलायें**, पृ. २९२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११. जादूसाह

ये आगरा के रहने वाले धनी जैन व्यापारी तथा अंग्रेजी ईस्ट इण्डिया कम्पनी के दलाल थे।[३६] अंग्रेजों ने इनको आगरा के दरबार से सम्बन्धित व्यापारिक कार्यों को निपटाने के लिए रखा था। इन्होंने इस सन्दर्भ में आगरा में एक मकान बारह सौ मुद्राओं में खरीदा था।[३७] व्यापार के उद्देश्य से इनको सूरत, अहमदाबाद, बुरहानपुर आदि स्थानों की यात्रा करनी पड़ती थी। रुपयों के लेन-देन को लेकर अंग्रेजों का इनसे सम्बन्ध खराब हो गया था, इसलिए इनको दलाली के कार्य से मुक्त कर दिया गया था।[३८] ये महाजनी का भी कार्य करते थे। इनके द्वारा किये किसी धार्मिक कार्य का उल्लेख नहीं मिलता, लेकिन सन् १६१० ई. के आगरा संघ द्वारा भेजे गये विज्ञप्ति-पत्र में इनका नाम आया है।[३९]

१२. कल्याण साह

ये आगरा के रहने वाले धनी जैन व्यापारी थे तथा महाजनी का कार्य करते थे।[४०] ये अंग्रेजों तथा अन्य व्यापारियों को ब्याज पर आर्थिक सहायता करते थे। इस कार्य हेतु इन्होंने आगरा के अतिरिक्त अन्य कई नगरों में अपने प्रतिनिधि नियुक्त किये थे। पटना में भी इसी तरह का प्रतिनिधि रहता था।[४१] इन लोगों को साहू या साह के नाम से जाना जाता था। सर्राफ[४२] के रूप में भी कल्याण साहू प्रसिद्ध थे। सर्राफों में उस समय काफी एकता थी। सभी लोग नियोजित ढंग से कार्य करते थे, यही कारण था कि इन लोगों का व्यापार पूरे देश में अबाध गति से सम्पन्न होता था। सन् १६१० ई. के विज्ञप्तिपत्र में इनका नाम आया है।[४३]

---

३६. विलियम फोस्टर '**इंग्लिश फैक्ट्रीज इन इण्डिया**' द्वितीय भाग, १६२२-२३ (आक्सफोर्ड, १९०८) पृ. २१।

३७. वही, पृ. १४७।

३८. वही, पृ. १४७।

३९. **प्राचीन विज्ञप्तिपत्र** पृ. २५।

४०. विलियम फोस्टर '**इंग्लिश फैक्ट्रीज इन इण्डिया**' प्रथम भाग, १६१८-२१ (आक्सफोर्ड, १९०६) पृ. २४७।

४१. वही, पृ. २४७।

४२. सर्राफ–विभिन्न स्थानों पर प्रचलित मुद्राओं को लेना तथा उनको आवश्यकतानुसार दूसरी मुद्राओं में परिवर्तित करना, यही काम सर्राफ का होता था अर्थात् Mo: ey changer.

४३. **प्राचीन विज्ञप्तिपत्र**, पृष्ठ २५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३. नाथूसाह

ये आगरा के रहने वाले धनी जैन महाजन थे। अंग्रेजों के साथ व्यापार करने के उद्देश्य से दो या तीन साल तक सूरत (गुजरात) जाकर रहे। अंग्रेजों ने इनको सर्राफ के रूप में मान्यता प्रदान करके पुनः आगरा भेज दिया।[४४] सन् १६१९ ई. में ये आगरा में अंग्रेजों के सर्राफ का कार्य करने लगे। व्यापार के सन्दर्भ में इनको गुजरात के नगरों अहमदाबाद आदि स्थानों पर भी जाना पड़ता था। अक्सर ये सम्राट के साथ अंग्रेजों के प्रतिनिधि के रूप में यात्रा करते थे।[४५] सन् १६१० ई० के विज्ञप्तिपत्र में इनका नाम भी सम्मिलित है।[४६]

१४. भोमजी

ये आगरा के रहने वाले धनी जैन महाजन (बैंकर) थे। इनका घनिष्ठ संबंध प्रसिद्ध जैन व्यापारी वीरजी बोरा से भी था। इन्होंने अंग्रेज कम्पनी की आगरा-शाखा को ३००० रुपये का ऋण सन् १६२८ ई. में दिया था।[४७] ये अक्सर व्यापार के उद्देश्य से आगरा के बाहर अन्य प्रसिद्ध व्यापारिक नगरों में भी जाया करते थे। कुछ समय पश्चात् इन्होंने अंग्रेजों को ऋण पर आर्थिक सहायता देना बन्द कर दिया था तथा वीरजी बोरा के ही समर्थक बने रहे। सन् १६१० ई. के आगरा के विज्ञप्ति-पत्र में इनका नाम सम्मिलित है।[४८]

१५. कासीदास

ये सम्भवतः आगरा के ही रहने वाले धनी जैन व्यापारी थे। ये, उस समय के सबसे धनी जैन व्यापारी वीरजी बोरा, के प्रतिनिधि (वकील) के रूप में आगरा रहते थे। बोरा की व्यापारिक शाखाएँ आगरा, बुरहानपुर, सूरत, गोलकुण्डा आदि स्थानों पर फैली हुई थी। कासीदास जी आगरा में रहकर अंग्रेजों के साथ वीर जी बोरा की ओर से सम्बन्ध बनाये रखते थे तथा दूसरी ओर वीर जी बोरा की ओर से मुगल दरबार से भी मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध कायम रखते थे। व्यापार के सन्दर्भ में, इनको

---

४४. **'इंग्लिश फैक्ट्रीज इन इंडिया'** प्रथम भाग (१६१८-२१) पृष्ठ ९१।

४५. वही, पृष्ठ ९१।

४६. **प्राचीन विज्ञप्तिपत्र,** पृष्ठ २५।

४७. विलियम फोस्टर, **इंग्लिश फैक्ट्रीज इन इण्डिया,** तृतीय भाग १६२४-२९ (आक्सफोर्ड, १९०९) पृष्ठ २७१।

४८. प्राचीन विज्ञप्तिपत्र, पृष्ठ २५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६३० ई. में बूँदी के राजा राव रतन से भी मिलना पड़ा था। राजा के मुख्य सलाहकार गंगाराम से भी इनको संपर्क बनाना पड़ा था।[५०] सन् १६१० ई. के आगरा के विज्ञप्तिपत्र में इनका भी नाम आया है।[५१]

१६. गुरुदास

ये आगरा के रहने वाले धनी जैन व्यापारी थे। प्रसिद्ध अंग्रेजों के दलाल जादू के ये सम्बन्धी थे[५२] तथा अंग्रेजों के प्रतिनिधि के रूप में वीर जी बोरा के पास आते जाते थे।[५३] ये एक सम्पन्न महाजन थे तथा ऋणों की वसूली अच्छी तरह से करते थे। संभवतः ये जवाहरात का भी व्यापार करते थे तथा उसकी आपूर्ति करते थे।[५४]

१७. धनजी

ये दिगम्बर-सम्प्रदाय के जैन व्यापारी थे। आगरा में रहकर अंग्रेजी कम्पनी में दलाली का काम करते थे।[५५] अंग्रेज कम्पनी के ईमानदार दलाल के रूप में प्रसिद्ध थे। धनजी कई भारतीय भाषाओं के ज्ञाता थे, अतः अंग्रेजों ने इनकी सेवायें प्राप्त की थी।[५६] इस प्रकार, धनजी में दोहरी योग्यता थी, जिसका अंग्रेजों को लाभ मिलता था। अंग्रेज कम्पनी के ऋणों को ये वसूल करते थे। इस संदर्भ में इनको लाहौर आदि स्थानों में जाना पड़ता था। आसफ खाँ से इन्होंने अंग्रेजों का बकाया धन तेरह सौ रुपये प्राप्त किया था, जिसको उसने मूँगा खरीदने पर दिया था।[५७] सन् १६२८ ई. में इन्होंने अंग्रेजों के लिए दलाली करने से इंकार कर दिया था, लेकिन उनके भाषिक मार्गदर्शक बने रहे।[५८] सन् १६५८ ई० में नागपुर के एक प्रतिमालेख में इनका नाम संघवी धनजी आया है। जिससे पता चलता है कि इन्होंने

---

४९. विलियम फोस्टर, **इंग्लिश फैक्ट्रीज इन इण्डिया** चतुर्थ भाग १६३०-३३ (आक्सफोर्ड, १९१०), पृष्ठ ९०।

५०. वही, पृष्ठ ९०।

५१. **प्राचीन विज्ञप्तिपत्र**, पृष्ठ २५।

५२. **इंग्लिश फैक्ट्रीज इन इण्डिया** चतुर्थ भाग, १६३०-३४, पृष्ठ ९०।

५३. **इंग्लिश फैक्ट्रीज इन इण्डिया**, तृतीय भाग १६२४-२९, पृष्ठ १९०।

५४. वही, पृष्ठ ८६। ५५. वही, पृष्ठ ३४। ५६. वही, पृ. २२८।

५७. वही, पृ. ९४। ५८. वही, पृ. ४०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपने पिता संघवी खांभा के साथ मिलकर उक्त प्रतिमा की प्रतिष्ठा की थी। भट्टारक-सम्प्रदाय के इन्द्रभूषण मुनि ने उक्त मूर्ति की प्रतिष्ठा कराई थी।'[५९]

१८. कुँवरपाल सोनपाल

ये दोनों भाई प्रसिद्ध ओसवाल जैन व्यापारी तथा धार्मिक व्यक्ति थे। मुगल सम्राट जहाँगीर के शासन काल (१६१४ ई.) में इनके द्वारा किये गये धार्मिक कार्यों (मूर्तिप्रतिष्ठा, मन्दिर-निर्माण आदि) की सूचना आगरा, मिर्जापुर, लखनऊ तथा पटना के मूर्तिलेखों एवं मन्दिर-प्रशस्तियों से मिलती है। आगरा के पार्श्वनाथ चिंतामणि मन्दिर की प्रशस्ति में इनके परिवार तथा अन्य कार्यों के बारे में विस्तृत जानकारी मिलती है।[६०] इस प्रशस्ति का समय १६१४ ई. है। प्रशस्ति से पता चलता है कि १६१४ ई. में आगरा निवासी कुँवरपाल सोनपाल नामक भाइयों ने वहाँ तीर्थंकर श्री श्रेयांसनाथ जी का मन्दिर बनवाया था, जिसकी प्रतिष्ठा अँचलगच्छ के आचार्य श्री कल्याणसागर ने कराई थी। इस अवसर पर मन्दिर-प्रतिष्ठा के साथ ही ४५० अन्य प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा हुई थी।[६१] इनमें से कुछ प्रतिमाओं के लेख नाहर जी ने अपने लेख संग्रह में दिये हैं। प्रशस्ति से उनके परिवार के लोगों के बारे में प्रकाश पड़ता है। इनके पिता का नाम ऋषभदास था, जो दो भाई थे। भाई का नाम शाह वेमन था। ऋषभदास के कुँवरपाल और सोनपाल दो पुत्र थे। इन लोगों को रूपचन्द, चतुर्भुज, धनपाल और दुलीचन्द नामक चार पुत्र थे।[६२] शाह वेमन के दो पुत्रों, षेतसी और नेतसी का नाम प्रशस्ति में है। ये ओसवाल जाति के लोढ़ा गोत्र के अन्तर्गत आते थे। इनकी माता का नाम रेखश्री था, चूँकि ऋषभदास का उपनाम रेषा था, अतः उनकी पत्नी रेखश्री कहलाई शाह वेमन की स्त्री का नाम शक्तादेवी था। कुंवरपाल सोनपाल जहाँगीर सम्राट् द्वारा सम्मानित थे। उसने इनको सीलदार

५९. डॉ. विद्याधर जोहरापुरकर सम्पा० **जैन शिलालेख संग्रह** भाग चार (काशी, भारतीय-ज्ञानपीठ, १९६१) पृ. ४०६।

६०. पूरनचन्द नाहर, सं० **जैनलेख संग्रह** द्वितीय भाग (कलकत्ता, १९२७) लेखांक १४५६

६१. बनारसीदास जैन, कुँवरपाल सोणपाल प्रशस्ति **जैन साहित्य संशोधक** (खण्ड २ अंक १) पृ. २६।

६२. लखनऊ के लेख १५८२ में पुत्र दिया है लेकिन पटना के लेख ३०७ में भाई लिखा है। दोनों लेख एक ही समय सन् १६१४ ई० के हैं। नाहर का लेख संग्रह प्रथम व द्वितीय भाग देखें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के पद पर नियुक्त किया था।[६३] ये दोनों भाई व्यापार कुशल तथा धार्मिक कार्यों में धन लगाने वाले थे। इन्होंने तीन भवनवाली पौषधशाला[६४] का निर्माण करवाया था। शत्रुंजय, आबू, गिरनार, सम्मेतशिखर आदि तीर्थों की संघ सहित यात्रा करके संघाधिपति की उपाधि प्राप्त की थी।[६५] इनके पास पशुओं का एक समूह था, जिसमें १२५ घोड़े, २५ हाथी आदि थे। इन्होंने दो विशाल जिन चैत्यों का निर्माण करवाया था, जिनमें ऊँचे-ऊँचे चित्र एवं झंडे आदि लगे थे।[६६]

अन्य लेखों से पता चलता है कि इन्होंने मिर्जापुर में भी एक जिन मन्दिर बनवाया था।[६७] पटना में भी इनके द्वारा प्रतिमा-प्रतिष्ठा का उल्लेख मिलता है।[६८] सम्भवतः ये व्यापार को ध्यान में रखते हुए लगभग १६१५ ई. पटना नगर में जा बसे थे। यद्यपि इनका नाम सन् १६१० ई. के आगरा संघ के विज्ञप्तिपत्र में नहीं है, लेकिन इनके चचेरे भाई षेतसी व नेतसी पुत्र शाह वेमन के नाम उसमें है।[६९] इन लोगों ने भी पटना में मूर्ति-प्रतिष्ठा की थी।[७०] अहमदाबाद के एक लेख से पता चलता है कि इनके पुत्र रूपचंद की तीन स्त्रियाँ रूपश्री, कोभा तथा केसर अपने पति की मृत्यु पर १६१५ ई. में सती (सागमन-सहगमन) हो गई थी।[७१]

उपर्युक्त तथ्यों से कुछ बातों पर प्रकाश पड़ता है—

(१) कुँवरपाल सोनपाल एक धनी जैन व्यापारी थे इनको संघाधिपति की महान् उपाधि मिली थी।

(२) इन्होंने आगरा, लखनऊ, मिर्जापुर, पटना तथा गुजरात आदि राज्यों की व्यापारिक एवं धार्मिक यात्राएँ की थीं। आगरा-निवासी होकर व्यापार हेतु पटना जा बसे थे।

६३. **'भानुचन्द्रगणिचरित्र'** प्रस्तावना, पृ. २२।

६४. यह एक प्रकार का विश्राम गृह होता है जिसमें जैन यात्री विश्राम करते थे।

६५. 'कुँवरपाल सोनपाल प्रशस्ति', पृ० २८।

६६. वही, पृ. २८।

६७. पूरनचन्द नाहर, **जैन लेख संग्रह**, प्रथम भाग (कलकत्ता, १९१८), लेखांक ४३३।

६८. वही, लेखांक ३०७, ३०८, ३०९।

६९. **प्राचीन विज्ञप्तिपत्र** पृ. २५।

७०. **जैन लेख संग्रह,** प्रथम भाग, लेखांक ३१०, ११।

७१. अगरचन्द नाहटा, सती प्रथा और ओसवाल समाज **ओसवाल नवयुवक** (सितम्बर १९३७) पृ. २८४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(३) इनके प्ररिवार में बहु विवाह-प्रथा प्रचलित थी तथा स्त्रियों को ससुराल में नया नाम दिया जाता था।

(४) सती प्रथा इस समाज में विद्यमान थी। विशेष रूप से ओसवाल जाति के जैनों में।

१९. संघपति अभयराज एवं जगजीवन

ये आगरा के रहने वाले धनी अग्रवाल जाति के जैन थे। व्यापार इनका मुख्य व्यवसाय था। संघपति अभयराज ने आगरा में एक विशाल जिन मन्दिर बनवाया था।[७२] इनको संघपति की उपाधि से विभूषित किया गया था। इनकी कई पत्नियाँ थीं, इनमें सबसे छोटी मोहनदे से जगजीवन का जन्म हुआ था। जगजीवन एक सम्पन्न जैन के साथ ही साथ राजनीतिक व्यक्ति थे। शाहजहाँ के शासनकाल में पाँचहजारी मंसबदार उवराव जाफर खाँ के जगजीवन दीवान थे। उस समय आगरा के जैनों में कुछ आध्यात्मिक व्यक्ति थे उसमें जगजीवन भी थे। इन्होंने सन् १६४९ ई. में 'बनारसीविलास' का संकलन किया था।[७३]

२०. जगत सेठ के पूर्वज राय उदयचंद

प्रथम जगत सेठ फतहचंद के पूर्वज मूलतः अहमदाबाद के निवासी थे।[७४] उनमें से पदमसी सन् १६२७ ई. में खम्भात जा बसे। इनके दो पुत्र थे—श्रीपति और अमरदत्त। संभवतः दोनों ही जोहरी का कार्य करते थे। शाहजहाँ की विशेष कृपादृष्टि अमरदत्त पर हुई, वह इनको अपने साथ आगरा ले आया। आगरा में अमरदत्त को जवाहरात की मुकीमी का पद मिला,[७५] फिर यह पद उसके बेटों को मिला। इनके दो पुत्र थे—राय उदयचंद और केसरीसिंह। हीरानंद की पुत्री तथा सेठ माणिकचंद की बहन धनबाई का विवाह राय उदयचंद से हुआ। इनके चार पुत्र थे—मित्रसेन, सभाचंद, फतहचंद और रायसिंह। फतहचंद को उनके मामा मानिकचंद जो निःसंतान थे, ने १७०० ई. में गोद ले लिया।[७६] ये उस समय पटना में ही थे और प्रायः व्यापार में मानिकचंद का सहयोग करते थे। सम्राट फर्रुखसियर ने अपने शासन के पाँचवें वर्ष एक फर्मान निकालकर फतहचंद को भी सेठ की उपाधि से विभूषित किया; इसके पूर्व मानिकचंद भी सेठ की उपाधि प्राप्त कर चुके थे। लेकिन, प्रथम जगत सेठ होने का गौरव फतहचंद को ही मिला।[७७]

---

७२. **भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ** प्रथम भाग, पृ. ६०।

७३. परमानंद शास्त्री 'अग्रवालों का जैन संस्कृति में योगदान' **अनेकान्त** (अगस्त १९६७)।

७४. पारसनाथ सिंह, **जगतसेठ** (प्रयाग, भारती भंडार प्रका०, १९५०) पृ० ६७।

७५. वही, पृ० ६७। ७६. वही, पृ० ६७। ७७. वही, पृ० ६८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२१. मानसिंह जौहरी

ये मूलतः आगरा निवासी थे तथा जैनधर्म का पालन करते हुए जौहरी का कार्य करते थे।[७८] इनका समय औरंगजेब के शासन काल के अन्तर्गत आता है। कविवर द्यानतराय ने १६९३ ई. में 'धर्मविलास' नामक ग्रंथ की रचना की, जिसमें उन्होंने मानसिंह जौहरी के आध्यात्मिक कार्यों का वर्णन करते हुए लिखा है कि आगरा में इस समय अनेक जैन बसे हैं, जिनको धार्मिक स्वतन्त्रता प्राप्त है तथा औरंगजेब का शासन है, जिसके शासन में शान्ति-व्यवस्था बनी हुई है। उसने आगे लिखा है कि उस समय आगरा और दिल्ली में जैन धर्मावलम्बी धार्मिक संगठन बनाये गये थे, जिनमें धार्मिक चर्चा होती थी। आगरा में उस समय मानसिंह जौहरी की सैली (या संगठन) प्रसिद्ध थी। इसी प्रकार दिल्ली में सुखानंद की सैली थी।[७९]

२२. शाह वर्द्धमान और उनका परिवार

ये आगरा के रहने वाले थे। जहाँगीर के शासनकाल में सम्पन्न जैनों में इनकी गणना की जाती थी। इनका मुख्य कार्य व्यापार था। ये ओसवाल जाति के गुहाड़ गोत्र के थे। इनके कई पुत्र थे—शाह मानसिंह, रायसिंह, कनकसेन, उग्रसेन तथा ऋषभदास।[८०] इनके सभी पुत्र धन सम्पन्न व्यक्ति थे तथा धार्मिक कार्यों पर धन व्यय करते थे। इन लोगों ने अपने पिता के आदेशानुसार शत्रुंजय तीर्थ पर सहस्रकूट तीर्थ क्षेत्र का १६५३ ई. में निर्माण करवाया। तपागच्छाचार्य हरिविजय सूरि की परम्परा में श्री विनयविजयमुनि ने इसकी प्रतिष्ठा करवाई थी।[८१] उपर्युक्त धार्मिक कार्यों से इनकी सम्पन्नता का आभास मिलता है। सन् १६१० ई. के विज्ञप्तिपत्र में आगरा संघ के श्रावकों एवं संघपतियों की सूची में उल्लिखित शाह वर्द्धमान, इनका ही नाम जान पड़ता है।[८२]

---

७८. द्यानतराय **'धर्मविलास'** (बम्बई, जैन ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, १९१४) पृ० २५५।

७९. वही, पृ० २५५।

८०. सुख सम्पतराय भंडारी तथा अन्य **'ओसवाल जाति का इतिहास'** (भानपुरा, इन्दौर, ओसवाल हिस्ट्री पब्लिशिंग हाउस, १९३४) पृ० १३७।

८१. वही, पृ० १३७।

८२. प्राचीन विज्ञप्तिपत्र, पृ० २५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपर्युक्त जैन व्यापारियों के कार्य-कलापों पर दृष्टिपात करने से निम्नांकित तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है—

(१) अधिकांश जैन व्यापारी, महाजनी, सर्राफ, दलाली, जवाहरात का व्यापार, कपड़े का व्यापार, तेल, घी एवं अन्य खाद्य-सामग्री का व्यापार करते थे।

(२) विदेशी व्यापारी (अंग्रेज, डच, पुर्तगाली आदि) इनसे व्यापार में सहयोग एवं सहायता लेते थे, क्योंकि सत्रहवीं शताब्दी में इस देश के व्यापार पर जैनों का सफल हस्तक्षेप था; इनके सहयोग के बिना कोई विदेशी व्यापारी सफल नहीं हो सकता था।

चूँकि जैन व्यापारी अपने देश की भाषाओं एवं परम्पराओं से परिचित थे, इसलिए विदेशी व्यापारियों को इनसे विशेष सहायता मिलती थी।

(३) जैन व्यापारियों की सम्पन्नता का अनुमान इस बात से होता है कि शासक वर्ग भी आवश्यकता पड़ने पर उनसे ऋण लेता था।

(४) जैन व्यापारियों की प्रामाणिकता का आकलन इस बात से किया जा सकता है कि धन की रक्षा और विनिमय सम्बन्धी अनेक महत्त्वपूर्ण पदों पर वे शासकों द्वारा नियुक्त किये जाते थे।

(५) जैन व्यापारी बहुत ही व्यवहार कुशल होते थे। इन लोगों ने अथक परिश्रम करके न केवल अपने देश के विभिन्न स्थानों पर व्यापार किया बल्कि विदेशों से भी व्यापार किया। इस सन्दर्भ में इनको तत्कालीन मुगल सम्राटों का भी सहयोग मिला। अकबर, जहाँगीर एवं शाहजहाँ इन जैन व्यापारियों एवं साधुओं से काफी प्रभावित थे तथा इनका सम्मान करते थे यद्यपि औरंगजेब एक कट्टर शासक और धार्मिक असहिष्णुता का पोषक था तथापि उन कठिन परिस्थितियों में भी जैनों ने व्यवहार कुशलता का परिचय देते हुए उससे आज्ञा प्राप्त करके अपने धार्मिक कृत्य किये, संघ निकाले और मन्दिर बनवाये। इसी प्रकार, व्यापार आदि में मुगल सम्राटों का सहयोग प्राप्त करते थे। औरंगजेब के समकालीन जैन कवि द्यानतराय ने औरंगजेब के शासन काल की प्रशंसा की है तथा लिखा है कि उसके काल में जैनों को धार्मिक स्वतन्त्रता मिली थी। इससे आभास मिलता है कि औरंगजेब के शासन काल में भी जैनों पर विशेष धार्मिक अंकुश नहीं था। यह इस जाति की व्यवहार कुशलता का परिचायक है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(६) जैन समाज में धार्मिक विश्वास की जड़ें काफी गहरी थीं। उस समय किसी व्यक्ति की सम्पन्नता का अनुमान उसके द्वारा किये गये धार्मिक कार्यों से लगाया जाता था। अगर किसी व्यक्ति ने तीर्थ यात्रा-संघ निकाला, तो वह 'संघवी' या 'संघपति', यदि कई तीर्थों के लिए संघ निकाला तो 'संघाधिपति' कहलाता था। ये पदवियाँ जैन समाज में सम्पन्नता का परिचायक थीं तथा उनको समाज में सर्वोच्च स्थान प्राप्त होता था। इन सब कार्यों में काफी धन खर्च होता था। प्रायः लगभग सभी जैन व्यापारियों ने धार्मिक कृत्य किये।

इतिहास विभाग
पटना विश्वविद्यालय
पटना, बिहार।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org